बीच आर्थिक एकता कायम हुई।

मध्यकाल में एशिया में मुख्य रूप से पूर्वी सभ्यता के चार उत्पादों का व्यापार होता था – सिल्क, पोर्सलेन, चन्दन की लकड़ी और काली मिर्च, जिसके बदले में धूप, अरबी घोड़े, हाथी के दांत, सूती कपड़े और धातु से बनी वस्तुओं का विनिमय किया जाता था। जहां तक चीन से व्यापार का सवाल है फारस की खाड़ी के जहाज 7वीं शताब्दी के अंत और 8वीं शताब्दी के आरम्भ में कैन्टोन पहुंच चुके थे। उनकी मुख्य रुचि चीन के रेशमी वस्त्रों में थी। चीनी लोग अरबों की दुनिया को अमूल्य और बहुमूल्य वस्तुओं का विशाल भंडार मानते थे। जावा और सुमात्रा के बारे में भी यही धारणा थी। इन दोनों क्षेत्रों से होकर ही विदेशी व्यापार हुआ करता था। दक्षिण अरब, फारस की खाड़ी और दक्षिण पूर्वी एशिया बहुमूल्य पत्थरों, मोतियों, धूप, इत्र, चन्दन की लकड़ी और मसालों का प्रमुख स्रोत थे और आधुनिक पूर्व काल में ये एक हजार वर्षों से भी ज्यादा समय तक महत्वपूर्ण बने रहे और मुख्य रूप से इन्हीं ऐशो आराम की वस्तुओं के लिए व्यापारी लम्बी-लम्बी यात्राएं करते थे, जोखिम उठाते थे और मुनाफा कमाते थे।

चीन पर मंगोल विजय (1280) के बाद साम्राज्य के समुद्रपार सम्पर्क कमजोर होने के बजाए मजबूत हुए। मार्को पोलो (1290) और इब्न बतूता (मृत्यु 1377) के अनुसार हांगचाऊ (Hangchow) और जैतून (Zaiton) नगर बंदरगाह इसी समय खूब फले फूले। जैतून बंदरगाह पर बड़े-बड़े जहाज लंगर डालकर खड़े रहते थे। सभी जहाज काली मिर्च से भरे होते थे। इन्हें एलेक्जेंड्रिया और ईसाई प्रदेशों में भेजा जाता था। ऐसे 100 जहाज जैतून में लंगर डालकर खड़े रहते थे। जब इब्न बतूता 1345–6 में इस शहर में आया तो उसे लगा कि यह संसार का सबसे बड़ा बंदरगाह है। यहां एलेक्जेंड्रिया और मक्का और मालाबार तट पर कालिकट से भी ज्यादा वाणिज्यिक यातायात होता था।

हालांकि 10वीं शताब्दी के अंत और 15वीं शताब्दी के मध्य में बीच हिन्द महासागर के व्यापार की दिशा में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। अब्बासी खिलाफत के पतन और मिस्र में फातिमियों के उदय से लम्बी दूरी का व्यापार मार्ग बगदाद और देमस्कस से खिसककर एडेन और फुस्तात की ओर मुड़ गया। भारत में 1303–4 में दिल्ली के तुर्की सुल्तानों ने गुजरात पर विजय प्राप्त कर ली और इसके समुद्र तटीय शहर इस्लामी सामाजिक और राजनैतिक प्रभाव के दायरे में आ गए। लगभग इसी समय इंडोनेशियाई द्वीपों के व्यापारिक बंदरगाहों और तटीय राज्यों ने भी इस्लाम धर्म को स्वीकार करना शुरू कर दिया था और धर्मांतरण की यह प्रक्रिया लगभग अगली तीन शताब्दियों तक चली। हिन्द महासागर में हो रही इन नई गतिविधियों के समानान्तर भूमध्यसागर के ईसाई क्षेत्र में भी स्थितियां करवट बदल रही थीं। स्पेन से मूरिश (अरब) शासकों का निष्कासन और वेनिस और जेनेवा के व्यापारिक वर्चस्व ने विश्व अर्थव्यवस्था की संरचना में नए समीकरण की प्रतीकात्मक शुरुआत कर दी। इसी समय फातिमियों द्वारा प्राचीन-काहिरा में सत्ता के हस्तांतरण से विभिन्न महादेशों के बीच में होने वाले व्यापार के लिए एलेक्जेंड्रिया एक महत्वपूर्ण पड़ाव बन गया और इस प्रकार उसका आर्थिक महत्व और भी ज्यादा हो गया। मिस्र के अय्यूबिद शासकों (1170–1260) और उसके बाद मामलूकों (1260–1517) के शासनकाल में लाल सागर के बन्दरगाहों का विस्तार किया गया और काहिरा की आर्थिक स्थिति मजबूत होती चली गई।

चीन में मिंग राजवंश (1368–1644) की आर्थिक नीतियों के कारण समुद्री व्यापार पर परस्पर विरोधी प्रभाव पड़ा। तीसरे मिंग सम्राट युंग-लू (Yung-lo) (1402–24) ने हिन्द महासागर के व्यापारिक राष्ट्रों के साथ चीन के आर्थिक संबंध की दिशा में एक नया प्रयोग करने की कोशिश की। इसके तहत 1405 और 1433 के बीच उसने कई समुद्री यात्राओं का आयोजन किया परन्तु 1433 में अचानक उसने यह योजना त्याग दी और बाद में मिंग

सम्राटों ने विदेशी आगन्तुकों के लिए चीन के समुद्री तटों को बन्द कर दिया। उन्होंने चीनी व्यापारियों के विदेशी व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इसके बावजूद मिंग शासनकाल में विदेशी व्यापार कई रूपों में जारी रहा। समुद्रतट पर फिलिपीन्स, इंडोचाइना और मलक्का तक व्यापारी छिप-छिप कर आया करते थे और तस्करी किया करते थे।

24.3 मध्ययुगीन यूरोप में व्यापार

सातवीं शताब्दी में भूमध्यसागर के क्षेत्र में इस्लाम के प्रवेश से पश्चिम के ईसाइयों के लिए यह समुद्र बन्द हो गया। परन्तु यह रुकावट सभी ईसाइयों के लिए नहीं थी। नेपल्स और बारी जैसे दक्षिणी इटालवी शहर के साथ-साथ वेनिस भी पूर्व में कॉन्सटेंटिनोपल के सम्राट को मान्यता देते रहे। एड्रियाटिक के शीर्ष पर स्थित होने के कारण सारासेनियाई विस्तार से उनके लिए कोई गंभीर खतरा नहीं था। वेनिस पहले से ही एक मजबूत और बड़ी समुद्री शक्ति था। 1100 तक आते-आते इसने समुद्र के पूर्वी तट पर पूर्णतः अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया जिसे वह अपना क्षेत्र समझता था और शताब्दियों तक उसका इस क्षेत्र पर नियंत्रण रहा। वस्तुतः यूरोप में दो बड़े वाणिज्यिक आंदोलन हुए। ये आंदोलन मध्ययुग के आरम्भ में इसकी सीमाओं पर आरम्भ हुए। एक आंदोलन पश्चिमी भूमध्यसागर और एड्रियाटिक और दूसरा बाल्टिक और उत्तरी सागर में आरम्भ हुआ। बाल्टिक और उत्तरी सागर पर स्कैन्डिनेवियों का बोलबाला था जो केवल पश्चिम से ही व्यापार नहीं किया करते थे। एक ओर जहां डेन्स और नॉर्वेजियन्स ने एंग्लोसैक्सन साम्राज्य पर कब्जा जमा लिया, वहीं इंगलैंड, स्कॉटलैंड और आयरलैंड तथा उनके पड़ोसी स्वीडिश रूस की ओर मुड़े। धर्मयुद्ध के बाद भूमध्यसागर पर मुसलमानों का वर्चस्व समाप्त होना एक दूसरी महत्वपूर्ण घटना थी। अब पूरा भूमध्यसागर पश्चिमी समुद्री व्यापार के लिए फिर से खुल चुका था। इन धर्मयुद्धों के परिणामस्वरूप काफी समय तक इतालवी शहर और थोड़ा बहुत प्रोवेन्स और कैटेलोनिया भी भूमध्यसागर पर छाए रहे।

उत्तरी यूरोप के व्यापार को पूर्वी और भूमध्यसागरीय वस्तुओं से बहुत लेना देना नहीं था। 9वीं और 10वीं शताब्दियों के बीच कई बार व्यापारी और योद्धा यूरोप के सुदूर उत्तर से बाइजेंटाइन तक सामान लाते थे और फिर बाइजेंटाइन से सामानों को लेकर पश्चिमी यूरोप की ओर जाते थे। बाद की शताब्दियों में इतालवी व्यापारी बराबर इंगलैंड और फ्लैन्डर्स के बंदरगाहों की ओर जाने लगे और अपने साथ लेवेन्टाइन और पूर्वी उत्पादों को भी लाने लगे। इसके अलावा इतालवी व्यापारी और उत्तर से आए व्यापारी, जर्मन, फ्लेमिश, अंग्रेज और फ्रांसीसी नियमित रूप से आवागमन करने लगे और मध्य तथा पश्चिमी यूरोप की हाटों में एक दूसरे से मिलने लगे। मध्ययुग में कई केन्द्रों ने प्रमुखता प्राप्त की। 12वीं और 13वीं शताब्दी में शैम्पेन, 14वीं और आरंभिक 15वीं शताब्दी में ब्रूजेज (Bruges) और 15वीं शताब्दी में जेनेवा और एन्टवर्प नामक शहरों का उदय हुआ। पूरे यूरोप से आए व्यापारी इतालवियों द्वारा लाए गए सामानों का दूसरी वस्तुओं से आदान-प्रदान करते थे।

पूरे उत्तरी यूरोप और दूसरे देशों के बीच होने वाले व्यापार में उत्तरी क्षेत्र के उत्पादों का बोलबाला था। ये ऐशो आराम की वस्तुएं नहीं थीं बल्कि जीवनयापन के लिए आवश्यक वस्तुओं का ही ज्यादा व्यापार होता था। दक्षिण में भी खाद्य पदार्थों या कच्चे माल का व्यापार भूमध्यसागर क्षेत्र में शुरू हो गया। दक्षिणी व्यापार इस दृष्टि से अलग था कि केवल भारी भरकम वस्तुएं नहीं बल्कि ऐशो-आराम की वस्तुओं के व्यापार की भी इन्होंने शुरुआत की। इसके विपरीत उत्तरी यूरोप का व्यापार लगभग जीवन-यापन की वस्तुओं तक सीमित था।

यूरोप में लम्बी दूरी की यात्राओं के जरिए मध्यकाल में वाणिज्यिक विकास हुआ। मसाले इस व्यापार का प्रमुख आकर्षण थे। इस व्यापार ने न केवल वेनिस को धनी बनाया बल्कि

पश्चिमी भूमध्यसागर के सभी बड़े बंदरगाहों को समृद्धि प्रदान की। अरब, भारत, और दक्षिण पूर्व एशिया से कारवां के जरिए सामान सीरिया तक पहुंचाया जाता था। यूरोप के जहाज प्रमुख रूप से सीरिया में लंगर डालते थे। परंतु 13वीं शताब्दी के आरंभ से यूरोप में प्रमुख रूप से चावल, संतरा, खुबानी, अंजीर, किशमिश, इत्र, औषधि और रंग के सामानों का आयात होता था। 12वीं शताब्दी के अंत से कच्चे सिल्क का भी आयात होने लगा। इन आयातों के बदले में इतालवी लेवेन्ट के बंदरगाह पर लकड़ी और हथियार और वेनिस द्वारा कभी-कभी दासों की भी आपूर्ति करने लगे। परंतु बहुत जल्द ही ऊनी सामान का निर्यात होने लगा। इटली में बने ऊनी कपड़े और 12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से फ्लैन्डर्स और उत्तरी फ्रांस से वस्त्रों का निर्यात होने लगा। परंतु इंगलिश जहाज उनके ऊन उत्पादों को निर्यात करने में मदद नहीं किया करते थे। ये सामान मुख्य रूप से महादेशीय जहाजों द्वारा ले जाया करते थे और 13वीं शताब्दी तक आते-आते ट्यूटोनिक हूणों का इन पर लगभग एकाधिकार हो गया। इस प्रकार यदि मध्ययुग में होने वाले समुद्री या विदेशी व्यापार से जुड़े दस्तावेजों को देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगिक उत्पादों की अपेक्षा कृषीय और खाद्य पदार्थों का ही ज्यादातर व्यापार होता था। मसलन, मसाले, शराब, मक्का, नमक, मछली और ऊन। सबसे पहले निचले देशों और बाद में फ्लोरेंस से कपड़े का निर्यात शुरू हुआ।

24.4. भारत का समुद्री व्यापार

मध्यकाल में भारत के समुद्रपार व्यापार में निरंतरता और परिवर्तन दोनों देखने को मिलते हैं। प्राचीन काल की ही तरह दवाइयां, मसाले, मालाबार की टीक की लकड़ी, बहुमूल्य पत्थर और ऐशो आराम की बहुत सारी वस्तुएं पश्चिम को निर्यात की जाती रहीं। इसके बदले में भारतीय बाजारों में युद्ध में उपयोग आने वाले जानवर, मसाले, दवाइयां, दुष्प्राप्य वस्तुएं, खिलौने और मोहक कपड़े विदेश से लाए जाते थे। हिन्द महासागर और चीनी सागर के पूर्वी क्षेत्रों में पारसमुद्रीय गतिविधियों के विस्तार से मध्य युग के आरंभ में व्यापार के तौर तरीके में कई प्रकार के परिवर्तन हुए। आरंभिक शताब्दियों में भारतीय और बौद्ध प्रभाव के फलस्वरूप दक्षिण पूर्व एशिया में महान सभ्य राज्यों के उदय होने से भारतीय व्यापारी इन क्षेत्रों की ओर आकर्षित हुए और इन विकसित होते बाजारों में कपड़ा व्यापार को काफी बढ़ावा मिला। जहां तक भारत और इंडोनेशिया के बीच के व्यापार का संबंध है, मसाले और इंडोनेशिया से आए कच्चे माल हिन्द महासागर के व्यापार के महत्वपूर्ण अंग थे। इंडोनेशिया और मलय प्रायद्वीप का व्यापार हिन्द महासागर के मुसलमान व्यापारियों के हाथों में था। ये मुसलमान व्यापारी मुख्यरूप से गुजरात से आकर इंडोनेशियाई जमीन पर बसने लगे। बंगाल से इंडोनेशिया के बाजारों में बड़ी मात्रा में कपड़ों का निर्यात किया जाता था। अफ्रीका से भी भारत के व्यापार के प्रमाण मिलते हैं और अरब प्रायद्वीप भारतीय आयात पर काफी हद तक निर्भर था। अधिकांश पश्चिमी व्यापार दूर-दराज के बाजारों तक फैला हुआ था। यह व्यापार कालिरा और प्राचीन तथा नवीन हौरमुज के जरिए ईरान, रूस, मध्य एशिया और पश्चिम के बाजारों तक पहुंचता था।

24.5 हिन्द महासागर में पुर्तगाली व्यापार

मसाले, ऐशोआराम के सामान और नायाब वस्तुओं के अलावा हिन्द महासागर के कई क्षेत्रों के समुदायों के जीवनयापन के लिए अनिवार्य वस्तुओं का भी व्यापार किया जाता था। भारत से टीक की लकड़ी का निर्यात किया जाता था। भारत की लकड़ी से बने जहाज फारस की खाड़ी और अरब सागर में चला करते थे। दक्षिण अरब, फारस की खाड़ी और

Scanned with CamScanner

मालद्वीप तथा मलय प्रायद्वीप के कई हिस्सों में भारत से चावल का निर्यात किया जाता था क्योंकि चावल इन प्रदेशों का मुख्य भोजन था। गुजरात, कोरोमण्डल और बंगाल में बने सूती कपड़े और अनाज का निर्यात किया जाता था।

पश्चिम की ओर से फारस की खाड़ी के दक्षिणी हिस्से से और हदरामावत (Hadramawt) के तटीय क्षेत्र से इस बात के प्रमाण मिले हैं कि इन स्थानों से भारत को घोड़ा का निर्यात किया जाता था। वास्को-डि-गामा के नेतृत्व में 1498 में पुर्तगालियों द्वारा उत्तमाशा-अन्तरीप के जरिए एशिया का सीधा समुद्री मार्ग खोज जाने से यूरोपीय-एशियाई व्यापार के इतिहास में एक नए युग की शुरुआत हुई। इसके पीछे पुर्तगालियों के दो उद्देश्य थे : i) यूरोप को भेजे जाने वाले मसालों की आपूर्ति पर एकाधिकार स्थापित करना, और ii) पारम्परिक एशियाई व्यापार पर नियंत्रण करना और कर लगाना। पुर्तगालियों की इस योजना की सफलता के लिए दो बातें जरूरी थीं: सबसे पहली बात यह कि एशियाई जहाजरानी पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना और दूसरा यह कि व्यापार करने के लिए जगह-जगह पर समुद्र तट के किनारे अपने सामरिक महत्व के अड्डे बनाना और इन पर अपने लोगों को खासतौर पर व्यापार के संचालन का भार सौंपना।

24.5.1 हिन्द महासागर में पुर्तगालियों की मजबूत होती स्थिति

अलबुकर्क (Albuquerque) ने 1510 में बीजापुर सुल्तान से गोवा छीन लिया और इसके बाद हिन्द महासागर क्षेत्र में भविष्य के पुर्तगाली समुद्रीय व्यापार के साम्राज्य की नींव डालने में नींव रखी गई। इसके बाद पूर्व में गोवा पुर्तगालियों का प्रमुख प्रशासनिक स्थल बन गया। इसके बाद उन्होंने 1511 में मलक्का पर कब्जा जमा लिया जो दक्षिण पूर्व एशिया के आंतरिक बंदरगाह की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण था और जहां से इस क्षेत्र के समुद्री मार्गों पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता था। फारस की खाड़ी के मुहाने पर स्थित होरमुज बंदरगाह पर भी 1515 में कब्जा जमा लिया गया और इसके बाद हिन्द महासागर के व्यापार को नियंत्रित करने के लिए प्रमुख क्षेत्रों में किले बनाने की पुर्तगाली योजना लगभग पूर्ण हो गई। पुर्तगाली यहीं नहीं रुके, उन्होंने हिन्द महासागर के कई क्षेत्रों, पूर्वी अफ्रीका के इलाके, मलक्का और भारत में कोचीन और मालाबार तटों पर कई किले बनाए। कुल मिलाकर उन्होंने हिन्द महासागर के चारों ओर 50 किलाबंद क्षेत्र निर्मित किए और इस क्षेत्र में अलग-अलग अवसरों पर उनके 100 जहाज तैनात रहते थे। पुर्तगाली एशिया से मुख्य रूप से मसाले और खासतौर पर काली मिर्च ले जाया करते थे। आरम्भ में पुर्तगाली काली मिर्च के लिए ही एशिया की ओर आए। 16वीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में समुद्री व्यापार में कुल एशियाई सामान का, भौतिक दृष्टि से 95 प्रतिशत और मूल्य की दृष्टि से 85 प्रतिशत, हिस्सा काली मिर्च का ही होता था। काली मिर्च अधिकांशतः भारत के मालाबार क्षेत्र से, लौंग और जायफल जैसे मसाले मुख्य रूप से मलक्का से और दालचीनी श्रीलंका से प्राप्त किया जाता था।

24.5.2 कर्ताज़ और काफिला

पुर्तगालियों ने 16वीं शताब्दी के दौरान हिन्द महासागर में व्यापार करने वाले व्यापारियों पर नियंत्रण स्थापित किया और उनसे कर लेना शुरू किया। उन्होंने कर्ताज़ और काफिला जैसी व्यवस्थाएं शुरू कीं जिसके कारण एशियाई व्यापार पर पुर्तगालियों का वर्चस्व स्थापित हो गया। अब एशियाई व्यापारियों को पुर्तगालियों से व्यापार करने के लिए कर्ताज़ या अनुमति पत्र प्राप्त करना होता था। अनुमति पत्र प्राप्त होने के बाद पुर्तगाली हथियारबंद नौसेना उन्हें अपनी सुरक्षा में समुद्रपार कराती थी। एशियाई राज्यों की नौसैनिक शक्ति बहुत ही कमजोर थी। हकीकत यह थी कि इसका लगभग नामोनिशान

ही नहीं था। इसलिए पुर्तगालियों को इस्तादो दा इंडिया (*Estado da India*) (शाब्दिक अर्थ भारत का राज्य, पुर्तगाल सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में वायसराय) स्थापित करने में किसी दिक्कत का सामना नहीं करना पड़ा। कर्ताज़ व्यवस्था के तहत प्रत्येक एशियाई जहाज को पुर्तगालियों से स्वीकृति पत्र या कर्ताज़ लेना पड़ता था। तभी तो प्रत्येक जहाज को यात्रा करने की अनुमति मिलती थी। निर्धारित बंदरगाह भी तय कर दिए जाते थे और गंतव्य स्थान के लिए निकलने से पहले उन्हें पुर्तगाली नियंत्रित बंदरगाहों पर शुल्क भी अदा करना पड़ता था। कर्ताज़ या अनुमति पत्र न होने पर जहाज को हिरासत में ले लिया जाता था और इसके नाविकों को तुरंत मार दिया जाता था या हिरासत में भेज दिया जाता था। कर्ताज़ होने पर भी यदि कोई जहाज इसमें लिखित शर्तों का उल्लंघन करता था तो उसे दंडित किया जाता था। कर्ताज़ के तौर पर जहाजों से मामूली रकम ली जाती थी।

पुर्तगालियों ने 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत के पश्चिमी तट पर काफिला व्यवस्था या काफिला व्यवस्था लागू की। इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि कर्ताज़ या अनुमति पत्र प्राप्त करने वाले जहाज एक साथ काफिले में निकलें, पुर्तगाल नियंत्रित बंदरगाहों पर पहुंचें, सीमा शुल्क अदा करें ताकि अकेले पाकर इन जहाजों पर मालाबारी समुद्री डाकू आक्रमण न करें। इस व्यवस्था के तहत सभी जहाज एक साथ निकला करते थे और पुर्तगाली नौसैनिक जहाज उनकी रक्षा किया करते थे। परन्तु कई भारतीय व्यापारी इन काफिलों में शामिल नहीं होते थे और गोवा में सीमा शुल्क अदा न कर के जबरदस्ती व्यापार किया करते थे। इस पुर्तगाली जहाजों बेड़ा को दो कार्य करने पड़ते थे : व्यापार करने वाले जहाजों को समुद्री डाकुओं से बचाना और यह देखना कि कोई भी पुर्तगाली व्यवस्था का उल्लंघन कर व्यापार न कर सके।

पुर्तगाली यूरोप में प्रमुख रूप से मसाला और उसमें भी खासतौर पर काली मिर्च का निर्यात करते थे। हालांकि 16वीं शताब्दी के आरम्भ में वे अन्य वस्तुएं भी निर्यातित करते थे। मलक्का पर कब्जा जमाने के बाद (1511) वे भारत के दक्षिणी पश्चिमी तट पर स्थित मालाबार क्षेत्र (बाद में कनारा से भी) से बड़ी मात्रा में काली मिर्च प्राप्त किया करते थे। इस प्रकार एशिया में भारत व्यापारिक गतिविधियों का प्रमुख स्थान बन गया। एशियाई व्यापार के संबंध में एशिया के दूसरे हिस्सों चीन और जापान का महत्व भी बढ़ गया। पुर्तगालियों ने अरब व्यापार पर भी एकाधिकार स्थापित करने का प्रयास किया। उनके आगमन के पूर्व अरब का व्यापार मुख्य रूप से अरब के व्यापारियों के हाथ में था। ये घोड़े फारस की खाड़ी क्षेत्र से आयातित किए जाते थे क्योंकि फारस और अरब में बेहतरीन नस्ल के घोड़े पाए जाते थे।

24.5.3 पन्द्रहवीं शताब्दी में भारतीय समुद्री व्यापार

अब यह देखना जरूरी है कि 16वीं शताब्दी में पुर्तगालियों की उपस्थिति ने भारतीय समुद्रपार व्यापार को किस प्रकार प्रभावित किया। इस प्रकार का विश्लेषण करने के पूर्व 15वीं शताब्दी में भारतीय समुद्रपार व्यापार की जानकारी होनी चाहिए। जेनेविव (Genevieve) बुशाँ (Bouchon) और डेनिस लोम्बार्ड (Denys Lombard) के अनुसार पुर्तगालियों के आगमन से पहले 15वीं शताब्दी के दौरान हिन्द महासागर में प्रचुर मात्रा में व्यापार हुआ करता था। 15वीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में हिन्द महासागर में चीनियों की मौजूदगी देखी जा सकती है। वस्तुतः साइमन डिग्बी ने यह दिखाया है कि पुर्तगालियों के आगमन के तीन सौ साल पहले भी चीनी हिन्द महासागर के जरिए व्यापार किया करते थे। हालांकि 1430 के दशक में उन्होंने पश्चिम की ओर जाना छोड़ दिया। परन्तु मलक्का में चीनी, भारतीय और मलय व्यापारियों की मुलाकात हो जाया करती थी। इस दौरान

पश्चिम के व्यापार पर अरबों की पकड़ ढीली पड़ रही थी जबकि चीनियों के हटने से पूर्व में एक शून्य पैदा हो गया। बहुत जल्द ही गुजराती व्यापारियों ने इस शून्य को भरने का काम किया। वस्तुतः 15वीं शताब्दी के दौरान गुजराती समुद्रपार व्यापार में प्रचुर विस्तार हुआ। अशिन दास गुप्ता ने ठोस प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि 16वीं शताब्दी में हिन्द महासागर में पुर्तगालियों के आगमन की अपेक्षा पश्चिमी हिन्द महासागर में तीन महादेशीय साम्राज्यों, मुगल, सफाविद और ऑटोमन के उदय से ज्यादा प्रभाव पड़ा। आरंभ में हिंसात्मक झड़पें हुईं, फिर समझौता हुआ और पुर्तगाली धीरे-धीरे इस ढांचे के भीतर समाते चले गए और अन्ततः लुप्त हो गए।

इस प्रकार 16वीं शताब्दी के आरंभ में भारतीय समुद्रपार व्यापार की जो तस्वीर उभरती है वह इस प्रकार है। भारतीय जहाजरानी मुख्य रूप से गुजराती मुसलमानों के हाथ में थी और उनका व्यापार मुख्य रूप से मात्र हिन्द महासागर तक सीमित था और कैम्बे तथा मलक्का के बीच के समुद्र मार्ग पर उनका वर्चस्व था। पश्चिम की ओर भारतीय जहाज लाल सागर और फारस की खाड़ी के बंदरगाहों की ओर बराबर जाते रहते थे परंतु अरब सागर में अरब जहाज मालिकों का ही बोलबाला था। चीन और मलय के बीच प्रमुख रूप से चीनी जहाज चला करते थे जबकि इंडोनेशिया के जल में मलय और जावा के जहाज चला करते थे। अगले तीन सौ वर्षों तक हिन्द महासागर में होने वाले व्यापार की यही ढीली ढाली संरचना बनी रही।

व्यापार मार्ग और व्यापार की जाने वाली वस्तुएं

सोलहवीं शताब्दी के दौरान हिन्द महासागर में एडेन से मलक्का की ओर जाने के लिए प्रमुख रूप से गुजरात या मालाबार होकर जाया जाता था। यह सबसे लम्बा और मोहक मार्ग था। यह लाल सागर का प्रवेश द्वार भी था। प्रमुख रूप से सूती कपड़े, नील, मसाले और औषधियों का व्यापार होता था। यूरोप से मुख्य रूप से ऊनी कपड़े, रेशम और सोना-चांदी आयात किया जाता था। कपड़ा और नील प्रमुख रूप से गुजरात से आता था और इसके बदले में प्रचुर मात्रा में सोना-चांदी प्राप्त होता था। कोचिन के रास्ते मालाबार से काली मिर्च और श्रीलंका से दालचीनी मंगाई जाती थी। मलक्का को भारत से कपड़ा प्राप्त होता था और पूर्वी इंडोनेशिया से काली मिर्च, जावित्री, जायफल और लौंग के बदले में लाल सागर से सोना-चांदी प्राप्त होता था तथा चीन से रेशम और पोर्सलेन मंगाया जाता था। गुजरातियों का एक और समुद्र मार्ग पर वर्चस्व था, जिस रास्ते वे पूर्वी अफ्रीका से दास, आबनूस (ebony) की लकड़ी, हाथी के दांत और सोना लाया करते थे और इसके बदले वे कपड़ा, मनका और खाद्यान्न दिया करते थे। हदरामवत और फारस की खाड़ी से होरमुज के रास्ते एक दूसरा मार्ग भी था जहां से घोड़े, मोती, फारसी रेशम और कालीन मंगाए जाते थे। बंगाल की खाड़ी में बंगाल से कपड़े और खाने पीने का सामान प्राप्त होता था। कोरोमंडल से कपड़ा और सूत निर्यात किया जाता था। दक्षिण में श्रीलंका में बहुमूल्य पत्थर और दालचीनी पैदा होती थी और इसके पूरब में पेगू कपड़े के बदले रत्न और धातु की आपूर्ति करता था। 15वीं शताब्दी के अंत में भारतीय व्यापारी ज्यादातर मलक्का जाया करते थे। इसके अलावा वे सुमात्रा की भी नियमित यात्रा किया करते थे। जावा के ग्रेसिक (Gresie) बंदरगाह से उनका घनिष्ठ नाता था और दक्षिण पूर्व एशिया में उनका बोलबाला था।

हिन्द महासागर के बाजारों में भारत के निर्यात के संबंध में कुछ मुद्दे गौरतलब हैं। सबसे पहली बात यह कि इस पूरे दौर में भारत प्रमुख रूप से कपड़े का निर्यातक बना रहा। इनमें से अधिकांश कपड़े सस्ते और रोजमर्रा के उपयोग के लिए होते थे और समुद्र के रास्ते एशिया के हर इलाके में निर्यात किए जाते थे। इसके अलावा चावल, गेहूं, दाल, तेल और घी जैसे खाने पीने की चीजों का भी भारत से निर्यात किया जाता था और हिन्द

महासागर के क्षेत्रों में इनकी बड़ी मांग थी। बंगाल, उड़ीसा और कनारा के तटों के आसपास के क्षेत्रों में अनाज का प्रचुर उत्पादन होता था। वे न केवल मालाबार और कभी-कभी सूरत जैसे भारतीय बंदरगाहों पर ही इन वस्तुओं की आपूर्ति करते थे बल्कि मलक्का, होरमुज और एडेन जैसे शहरों में भी इन वस्तुओं की आपूर्ति किया करते थे। गौरतलब है कि ये प्रमाण वस्तुतः जे. सी. वैन ल्यूर (J. C. Van Leur) के आरंभिक आधुनिक युग में हिन्द महासागर व्यापार के स्वरूप निर्धारण संबंधी उनके सिद्धांत का खंडन करते हैं।

वैन ल्यूर ने इस बात पर बल दिया था कि एशियाई व्यापार मुख्य रूप से विलासिता की वस्तुओं में निहित था जिसकी मात्रा तो कम थी परंतु मूल्य अधिक था। इस अवधारणा का खंडन मैलिंक रोयलोफ्ज (Meilink Roelofz), अशिन दास गुप्ता, एम. एन. पियरसन, सुशील चौधरी, माइकल पीयर्सन तथा अन्य विद्वानों ने किया है। वस्तुस्थिति यह थी कि भारत के लिए पश्चिमी एशियाई बाजार इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था कि वहां से निर्यात के बदले में सोना-चांदी प्राप्त होता था। जहां तक निर्यात का संबंध है हमें याद रखना चाहिए कि ऐशो आराम की वस्तुओं के साथ-साथ आम जीवन की वस्तुओं का भी लेन देन होता था और वस्तुतः आम जीवन की वस्तुएं ही भारत से ज्यादा मात्रा में निर्यातित की जाती थीं।

24.5.4 भारतीय समुद्रपार व्यापार पर पुर्तगाली व्यापार का प्रभाव

निस्संदेह गुजरात में भारतीय समुद्रपार व्यापार पर पुर्तगाली नियंत्रण का कुछ असर अवश्य पड़ा था जिसके परिणामस्वरूप 16वीं शताब्दी के दौरान गुजरात के समुद्रपार व्यापार में कुछ बदलाव आया। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं शताब्दी के अंत में गुजराती समुद्रपार व्यापार दो दिशाओं में होता था: लाल सागर और मलक्का। परंतु अगले सौ वर्षों में दक्षिण पूर्व एशिया की अपेक्षा लाल सागर ज्यादा महत्वपूर्ण हो उठा। इस प्रकार 16वीं शताब्दी में हिन्द महासागर में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। लाल सागर क्षेत्र में गुजरातियों का प्रभाव बढ़ने लगा जबकि दक्षिण पूर्व एशिया में धीरे-धीरे उनके व्यापार में गिरावट आई। निस्संदेह इस परिवर्तन में पुर्तगालियों का महत्वपूर्ण हाथ था।

वस्तुतः पुर्तगाली किसी भी स्तर पर इन मार्गों, उत्पादों या उत्पादन तकनीकों के क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण बदलाव नहीं ला सके। हां, उन्होंने इतना जरूर किया कि कुछ वस्तुओं के व्यापार को बदल दिया और भारतीय व्यापारियों को अतिरिक्त सीमा शुल्क देने के लिए बाध्य किया। पुर्तगालियों ने स्थिति को ज्यादा से ज्यादा अपने पक्ष में करने का प्रयास किया परंतु वे व्यवस्था को बदल न सके। पुर्तगालियों का सबसे ज्यादा प्रभाव गुजरात में ही था और भारत के अन्य हिस्सों में उनका प्रभाव अपेक्षाकृत कम था। इसलिए कोरोमंडल तट के सावधान चेट्टियार व्यापारियों पर कोई खास असर नहीं पड़ा। मालाबार में जहां पुर्तगालियों का नियंत्रण बहुत ही कड़ा और आक्रामक था वहां भी कई बार उनके नियंत्रण के घेरे को तोड़ने का प्रयास किया जाता था।

अंत में यह देखना महत्वपूर्ण होगा कि हिन्द महासागर में पुर्तगालियों की उपस्थिति का सामान्य रूप से क्या असर पड़ा। डब्ल्यू. एच. मोरलैंड के अनुसार पुर्तगालियों के आगमन से इस क्षेत्र में नए युग की शुरुआत हुई। इसे सबसे पहले वैन ल्यूर ने चुनौती दी जिन्होंने इस बात पर बल दिया कि 16वीं शताब्दी में भी एशियाई समुद्रपार व्यापार महत्वपूर्ण बना रहा। उन्होंने कहा कि यद्यपि पुर्तगाली महत्वपूर्ण काली मिर्च और मसाले के व्यापार को भी पूरी तरह अपनी मुट्ठी में करने में असफल रहे। वैन ल्यूर का ही अनुगमन करते हुए नील्स स्टीनगार्ड ने भी यह दिखाया कि 17वीं शताब्दी के आरंभ में डच और इंग्लिश

ईस्ट इंडिया कम्पनी के द्वारा इन वस्तुओं के यूरोप में निर्यात से पहले काली मिर्च और मसाले के निर्यात की मात्रा में कोई नाटकीय बदलाव नहीं आया। यहां तक कि सी. आर. बॉक्सर का भी यह मानना है कि 16वीं शताब्दी के अंत में पुर्तगालियों द्वारा केप से लिस्बन तक जितनी काली मिर्च ले जाई जाती थी उससे ज्यादा लाल सागर के जरिए भूमध्यसागरीय जहाजों पर अचेह (Achch) तक काली मिर्च ले जाई जाती थी। एम. एन. पियर्सन ने एक आकलन प्रस्तुत किया है जिसके अनुसार पूरी 16वीं शताब्दी में यूरोप तक पुर्तगालियों द्वारा पहुंचाई गई कालीमिर्च के कुल उत्पादन का 1/10 वां हिस्सा थी। यहां एक महत्वपूर्ण बात यह है कि जहां तक कुल एशियाई मसाला व्यापार का संबंध है – केवल वही नहीं जो लाल सागर और यूरोप में भेजा जाता था – पुर्तगालियों की भूमिका बहुत सीमित थी। एम. एन. पियर्सन के अनुसार ये अप्रासंगिक थे क्योंकि एशिया में मसाले की खपत बहुत ज्यादा थी अतः अंतिम रूप में हम यह कह सकते हैं कि अशीन गुप्ता ने बिल्कुल सही कहा कि जब तक यूरोपवासियों ने देशी लोगों को पराजित नहीं कर दिया, तबतक भारतीय समुद्र पार व्यापार में उनकी भूमिका गौण रही। निश्चित रूप से उनकी मौजूदगी रही थी, उनका अपना महत्व है परंतु यह नहीं कहा जा सकता है कि उस क्षेत्र में उस समय उनका वर्चस्व और बोलबाला था और यह भी कि भारतीय समुद्रपार व्यापार के इतिहास में कोई वास्कोडिगामा युग नहीं था जिसकी शुरुआत 1500 ई. में हुई थी।

24.6 यूरोपीय कम्पनियां और हिन्द महासागर व्यापार

सोलहवीं शताब्दी की तुलना में 17वीं और 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारतीय समुद्रपार व्यापार में अभूतपूर्व विस्तार हुआ। यह स्पष्ट है कि इस युग में हिन्द महासागर के जरिए होने वाले भारतीय समुद्रपार व्यापार के लिए लाल सागर व्यापार का महत्व बरकरार बना रहा। बाद में चीन से होने वाले व्यापार पर एक बार फिर बल दिए जाने के कारण इसमें बदलाव आया। भारत का समग्र विदेशी व्यापार डच, अंग्रेज और फ्रांसीसियों की त्रिकोणीय भागीदारी के परिणामस्वरूप तेजी से बढ़ा। इसमें भारतीय समुद्री व्यापारियों का भी योगदान रहा। यूरोप में मसाले का विस्तृत बाजार होने और पुर्तगालियों द्वारा इससे खूब मुनाफा कमाने से प्रेरित होकर 1600 में इंगलिश ईस्ट इंडिया कम्पनी और 1602 में डच ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना की गई। फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना बाद में 1664 ई. में हुई। 1725 और 1770 के बीच इसका विशेष महत्व रहा। ओस्टेन्ड, स्वीडिश और डेनिश जैसी यूरोपीय कम्पनियों ने 18वीं शताब्दी के आरंभ में अपना व्यापार शुरू किया और यह भी मामूली स्तर का। परंतु कुल मिलाकर 17वीं और 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में होने वाले व्यापार में डच और इंगलिश ईस्ट इंडिया कम्पनी का ही बोलबाला रहा।

24.6.1 भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुएं

आरंभ में 16वीं शताब्दी की तरह ही डच और अंग्रेज काली मिर्च और दूसरे मसाले खरीदते थे और एशिया से इसी का सबसे ज्यादा निर्यात होता था। परंतु पुर्तगालियों के कारण वे मालाबार या कनारा की अपेक्षा इंडोनेशिया से काली मिर्च प्राप्त करते थे। इसके परिणामस्वरूप यूरोपीय व्यापार का केन्द्र भारत की जगह इंडोनेशिया हो गया परंतु केवल 25 वर्षों के बाद ही भारत एक बार फिर यूरोपीय व्यापार का प्रमुख केन्द्र बन गया। ये कम्पनियां इंडोनेशिया में तथाकथित मसाला द्वीपों से काली मिर्च और मसाले खरीदा करती थीं। उन्हें इन वस्तुओं के बदले में 'नई दुनिया' से प्राप्त चांदी द्वारा भुगतान करना पड़ता था। परंतु उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इन द्वीपों में चांदी की नहीं बल्कि

सस्ते भारतीय कपड़ों की खूब मांग थी। यह देखकर वे भारत की ओर मुड़े। वे यहां से कपड़ा खरीदते थे और इंडोनेशिया से इसके बदले में मसाला खरीदा करते थे। इंडोनेशिया से मसाला खरीदने के लिए और उसके बदले में भारत में बना सस्ता और मोटा कपड़ा उपलब्ध कराने के लिए इन कम्पनियों ने कोरोमंडल समुद्री तट पर अपना ध्यान लगाया। युद्ध, अकाल और इस क्षेत्र में राजनीतिक अस्थिरता के कारण जब कोरोमंडल व्यापार अनिश्चित और महंगा साबित होने लगा तो इन कम्पनियों ने बंगाल की ओर रुख किया।

उन्होंने महसूस किया कि बंगाल में व्यापार करने के कुछ खास फायदे हैं क्योंकि यहां न केवल सबसे ज्यादा सूती कपड़े का उत्पादन होता है बल्कि उच्च कोटि का कच्चा रेशम और शोरा उपलब्ध था जिसकी यूरोप में काफी मांग थी। यह देखते हुए डचों और अंग्रेजों ने 1650 के दशक के आरंभ में बंगाल में अपने व्यापारिक अड्डे या कारखाने स्थापित किए और शीघ्रतया 17वीं शताब्दी में बंगाल के महत्वपूर्ण बंदरगाह हुगली पर भी ये कारखाने बनाए गए। परंतु 70 के दशक के पहले बंगाल इन कम्पनियों के एशियाई व्यापार का प्रमुख केन्द्र नहीं बन सका। 1670 के आसपास बंगाल के कपड़े रेशम के यूरोपीय निर्यात में अचानक विस्तार हुआ जो 80 के दशक में और तेजी से बढ़ा क्योंकि यूरोप में इन वस्तुओं की मांग में बढ़ोत्तरी हो रही थी। इसी तरह 1680 के आरंभ के आसपास बंगाल से कपड़े के निर्यात में बड़ा उछाल आया जिसके परिणामस्वरूप इन यूरोपीय कम्पनियों के एशियाई व्यापार का ढांचा बिल्कुल बदल गया। इसके बाद से बंगाल एशिया से होने वाले यूरोपीय व्यापार का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण हिस्सेदार बन गया। यह व्यापार मुख्य रूप से डच और इंगलिश कम्पनियों की भांति हुआ करता था परंतु 1757 में पलासी के युद्ध में अंग्रेजों के जीतने के बाद सारी कहानी बदल गई। बंगाल की राजनीति और आर्थिक सत्ता स्थापित होने के बाद इंगलिश कम्पनी और इसके नौकर अपने सभी यूरोपीय और एशियाई प्रतिद्वंद्वियों को इस क्षेत्र में होने वाले व्यापार की राह से हटाने में जुट गए।

18वीं शताब्दी के आरंभ में डच कम्पनी द्वारा हॉलैंड भेजे जाने वाले एशियाई वस्तुओं का औसत वार्षिक मूल्य का 40 प्रतिशत सामान बंगाल से प्राप्त किया जाता था और सम्पूर्ण एशिया से डचों द्वारा निर्यातित कपड़े के कुल मूल्य का 50 प्रतिशत से भी ज्यादा बंगाल से प्राप्त कपड़े का था। इस प्रकार 18वीं शताब्दी के आरंभ में न केवल भारत में बल्कि सम्पूर्ण एशिया में बंगाल डच कम्पनी का सर्वाधिक उत्कृष्ट कार्य क्षेत्र बन गया। इंगलिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की भी यही कहानी थी। अंग्रेज अक्सर बंगाल के व्यापार को कम्पनी के बाग का 'सर्वोत्तम पुष्प' या 'मायाब आभूषण' कहा करते थे। परंतु ये कम्पनियां कोरोमंडल तट, गुजरात और मालाबार क्षेत्रों से भी व्यापार किया करती थीं। धीरे-धीरे व्यापार के क्षेत्र में नई पद्धति उभरी। एशियाई व्यापार में पुर्तगालियों का स्थान अधिकांशतः डचों ने ले लिया परंतु डचों और इंगलिश कम्पनियों ने जोर-शोर पर जब यूरोपीय एशियाई व्यापार के विकास और प्रसार में रुचि लेनी शुरू की तो यहां एक प्रतिद्वंद्विता का उदय हुआ। पुर्तगालियों के समय में ऐसी बात नहीं थी क्योंकि वे एशिया में एकमात्र यूरोपीय व्यापारी थे।

निश्चित रूप से 17वीं शताब्दी के दौरान यूरोपीय-एशियाई व्यापार में मूलभूत बदलाव आया। इस दौरान डच मुख्य रूप से एशियाई व्यापार में लगे हुए थे और अंग्रेजों ने इसमें अपना हाथ नहीं डाला था। आरंभ में कोरोमंडल और बाद में बंगाल से सस्ता भारतीय कपड़ा खरीद कर उसके बदले इंडोनेशिया द्वीपों से काली मिर्च और मसाले प्राप्त किए जाते थे। जापान को बंगाल का कच्चा रेशम और बंगाल से ही पूर्वी द्वीपों को अफीम निर्यातित किया जाता था।

बंगाल सूती कपड़े और रेशम का प्रमुख आपूर्तिकर्ता था। यूरोप को इन्हीं दो वस्तुओं का प्रमुख रूप से निर्यात किया जाता था। 18वीं शताब्दी के आरंभ में डच और इंग्लिश व्यापारियों द्वारा एशिया से भेजे जाने वाले सामानों का हिस्सा बढ़कर 40 प्रतिशत हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और 18वीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में यूरोप को किए जाने वाले निर्यात में डच आगे थे परन्तु शताब्दी का अंत होते-होते अंग्रेजों ने उनकी बराबरी कर ली। 1720 की सन के आसपास अंग्रेज इस दौड़ में डचों से आगे निकल गए और 1740 के दशक के मध्य तक यह बढ़त जारी रही और इसके बाद एक बार फिर डच व्यापार में तेजी आई और दोनों एक धरातल पर आ गए। 1730 के दशक के आसपास अंग्रेज और डचों की प्रतिद्वंद्विता में फ्रांस भी उभरकर सामने आया। हालांकि उनकी यह चुनौती तीन या चार दशकों तक ही कायम रही।

मुख्य रूप से ये कम्पनियां कपास, कच्चा रेशम और शोरा का निर्यात किया करती थीं। भारतीय व्यापार में इन्हीं वस्तुओं की प्रमुखता थी बाकी अन्य सामान छिटपुट रूप से ही निर्यात किए जाते थे। डच कम्पनियां का अफीम बेचा करते थे। भारत से निर्यात होने वाली अन्य वस्तुओं में कुछ समय के लिए नील भी मुनाफे की वस्तु बनी परन्तु बाद में इसका स्थान बंगाल के कच्चे रेशम और शोरा ने ले लिया। परन्तु सभी यूरोपीय कम्पनियों की निर्यात सूची में कपड़े का स्थान सबसे ऊपर होता था। कपड़े के निर्यात में होने वाली तीव्र वृद्धि से यह पता चलता है कि 1660 के दशक के दौरान यूरोपीय समाज के उपभोक्ताओं की पसंद में क्रांतिकारी बदलाव आया। भारत के सामानों के प्रति इस रुझान या आकर्षण की झलक समकालीन यूरोपीय साहित्य में देखी जा सकती है। भारतीय कपड़ों के सस्ते होने के बजाए फैशन इस लोकप्रियता का सबसे बड़ा आकर्षण था। उस समय के कुछ लिखित दस्तावेजों को देखने से पता चलता है कि यूरोप में भारतीय कपड़ों की मांग अचानक काफी बढ़ गई थी।

24.6.2 भारत में आयातित वस्तुएं

भारतीय निर्यात के बदले में ये कम्पनियां बहुमूल्य धातु और ख़ासतौर पर चांदी लेकर आती थीं और इसके बदले में भारत से निर्मित वस्तुएं खरीदती थीं। इस प्रकार 17वीं और 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में "सामान के बदले सोना-चांदी" भारतीय व्यापार की प्रमुख विशेषता थी। हालांकि ये कम्पनियां अपने साथ कुछ कपड़े और ऊन से बने सामान और थोड़ी बहुत अन्य धातुएं जैसी चीजें लाते थे परन्तु उनकी मात्रा और मूल्य काफी कम हुआ करता था। ये कम्पनियां बंगाल से प्राप्त मालों के लिए 87.5 प्रतिशत भुगतान सोना-चांदी के रूप में किया करती थीं। इंग्लिश कम्पनी का भी यही हाल था। ईस्ट इंडीज में कुल मिलाकर वे लगभग 75 प्रतिशत भुगतान इसी प्रकार किया करते थे, इसी प्रकार 18वीं शताब्दी के दो दशकों तक बंगाल में 90 और 94 प्रतिशत भुगतान इसी रूप में किया जाता था। 18वीं शताब्दी के मध्य तक इस स्थिति में कोई खास परिवर्तन देखने को नहीं मिलता है।

परन्तु 1757 में बंगाल पर अंग्रेजों की विजय के बाद सोना-चांदी आना लगभग बंद हो गया और ईस्ट इंडिया कम्पनी अपने व्यापार के लिए बंगाल से ही धन जुटाने लगी। अन्य यूरोपीय व्यापारियों के निवेश में गिरावट आई और कम्पनी के नौकरों और निजी तौर पर अंग्रेजों ने निवेश करना शुरू किया जिसके बदले में यूरोप में हुंडी प्रदान की जाती थी। गौरतलब है कि उस समय केवल यूरोपीय ही सोना-चांदी के आयातक नहीं थे और वे ही सबसे ज्यादा सोना-चांदी नहीं लाते थे। बंगाल से व्यापार करने वाले एशियाई कम्पनियों का भी एक बड़ा समुदाय था जो उस समय यूरोपीयों की अपेक्षा ज्यादा व्यापार किया

करते थे और अपने साथ ज्यादा सोना-चांदी लाते थे।

24.7 भारतीय व्यापारियों का समुद्रपार व्यापार

जहां तक भारतीय व्यापारियों के समुद्रपार व्यापार का संबंध है, 17वीं शताब्दी के ठीक पहले पश्चिमी हिन्द महासागर में पुर्तगालियों की समुद्री ताकत कम होने से भारतीय समुद्रपार व्यापार में तेजी आई। इसके परिणामस्वरूप फारस की खाड़ी और दक्षिणी अरब में होने वाले व्यापार की मात्रा बढ़ी। भारतीय जहाज फारस की खाड़ी में हौरमुज को छोड़ते हुए बसरा या बंदर अब्बास (गोमब्रुन) जैसे खाड़ी के बंदरगाहों तक पहुंच सकते थे। इसके बाद 1622 में पुर्तगालियों के हाथ से हौरमुज निकलने के बाद फारस की खाड़ी में यातायात बिलकुल मुक्त हो गया और गुजरातियों ने इस आजादी का पूरा फायदा उठाया। हौरमुज के पतन के बाद इस व्यापार में डच और इंग्लिश कम्पनियों के प्रवेश का रास्ता खुल गया। इस क्षेत्र के व्यापार में उनकी सक्रियता से 17वीं शताब्दी में पश्चिम हिंद महासागर के वाणिज्यिक उठान में तेजी आई।

हिंद महासागर में डच और इंग्लिश कम्पनियों के उदय से 17वीं शताब्दी में भारतीय पार समुद्र व्यापार में एक बार फिर बदलाव आया। इस दौरान पश्चिम एशिया से होने वाले व्यापार में तेजी आई और दक्षिण पूर्व एशिया के व्यापार में कमी आई जो कि पिछली शताब्दी में भारतीय पार समुद्र व्यापार की मुख्य विशेषता थी। हालांकि पश्चिमी हिन्द महासागर में व्यापार पुर्तगालियों के चंगुल से मुक्त हो चुका था परन्तु पूर्व में मामला बिलकुल अलग था। मसाले के व्यापार में पुर्तगालियों का एकाधिकार समाप्त होते ही डचों ने उसपर एकाधिकार स्थापित कर लिया और उन्होंने इस काम को ज्यादा कुशलता और निर्ममता से लागू किया। डचों का एकाधिकार बिलकुल वास्तविक था और यह 17वीं शताब्दी के मध्य तक कायम रहा। इसका दबाव भारतीय व्यापारियों पर पड़ा। और गुजराती व्यापारियों ने दक्षिणी पूर्व एशिया के साथ व्यापार करना लगभग छोड़ दिया। यह इस बात से प्रमाणित होता है कि 1618 के बाद बहुत कम जहाज सुमात्रा की यात्रा किया करते थे। इसके बाद 1641 में डचों ने मलक्का पर और 1669 में मैकासार (Macasser) में सेलेबस (Celebes) पर विजय प्राप्त की जिससे मलय प्रायद्वीप के साथ होने वाले भारतीय समुद्रपार व्यापार लड़खड़ा गए। परन्तु भारतीय व्यापारियों ख़ासतौर पर कोरोमंडल, गुजरात और बंगाल के व्यापारियों ने डचों के चंगुल से बचने के लिए अपने व्यापार का रुख अचेह की ओर कर दिया जो भारतीय कपड़े के साथ-साथ काली मिर्च और टिन प्राप्त करने का प्रमुख बाजार बन गया क्योंकि अचेह के व्यापारी सुमात्रा और मलय द्वीपों के साथ व्यापार किया करते थे।

हालांकि 1660 के आसपास भारतीय व्यापारियों को अचेह और मलक्का के लिए उदारतापूर्वक अनुमति प्रदान की गई और उन्होंने अचेह जाना बेहतर समझा परन्तु उन्होंने डचों की इस मलय बंदरगाह से दूर रहने की मांग के सामने घुटने नहीं टेके। कोरोमंडल के व्यापारी लगातार केदाह (Kedah) जाते रहे, जहां टिन बहुत प्राप्त होता था। हालांकि यहां टिन का उत्पादन नहीं होता था और उत्तर की ओर भारतीय जहाज नियमित रूप से टेनासेरिम (Tenasserim) और पेगू के अलावा बर्मा और फुकेट जाया करते थे, लेकिन 1682 में बैंटम पर डचों की विजय के बाद और इसके परिणामस्वरूप इस बंदरगाह से भारतीय जहाजों को निकाल बाहर करने से भारतीयों के लिए जावा व्यापार ख़ासतौर पर कोरोमंडल के कपड़े व्यापार को नुकसान हुआ और इस प्रक्रिया में बैंटम से चीनी और जापानी वस्तुओं, ख़ासतौर पर तांबे की प्राप्ति को भी नुकसान हुआ। हालांकि इस नुकसान की भरपाई के लिए भारतीय जहाज जोहोर, ल्यामा और पैरक बंदरगाहों पर लंगर

Scanned with CamScanner

डालने लगी। ऐसा लगता है कि 17वीं शताब्दी का अंत होते-होते मलय द्वीप के साथ भारतीय व्यापारियों के व्यापार में निश्चित रूप से गिरावट आई।

हालांकि डच कई मलय बंदरगाहों से भारतीय व्यापारियों को दूर रखने में सफल रहे परंतु बाकी क्षेत्रों में भारतीय व्यापारियों ने कम्पनी के दबाव को झेलने के बजाए अपने व्यापार का रुख मोड़ लिया और उनके व्यापार में कोई कमी नहीं आई। इंडोनेशियाई द्वीपों से होने वाला व्यापार पूरी तरह निकल जाने के बाद गुजरातियों ने लाल सागर और फारस की खाड़ी की ओर रुख किया। इसलिए यह कहना गलत न होगा कि 17वीं शताब्दी का अंत भारतीय पार समुद्र व्यापार के साथ-साथ भारतीय कपड़ों के व्यापार का 'स्वर्णयुग' था। हालांकि लाल सागर और फारस की खाड़ी में गुजराती व्यापारी कम्पनी के हस्तक्षेप से दूर थे। परन्तु 17वीं शताब्दी के अंत और 18वीं शताब्दी के प्रारंभ में निजी अंग्रेज व्यापारियों के प्रवेश से उनका व्यापार प्रभावित होना शुरू हो गया।

अंग्रेज निजी व्यापारी दो प्रकार के थे : इंगलिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के नौकर और भारत में तथाकथित आजाद व्यापारी। ये भारत के पार समुद्रीय व्यापार के पश्चिमी और पूर्वी दोनों ही क्षेत्रों में कार्यरत थे। पश्चिम दिशा में उनका व्यापार लाल सागर और फारस की खाड़ी के क्षेत्रों के साथ-साथ भारत के पश्चिमी तट के बंदरगाहों तक फैला हुआ था। डच जहाजरानी सूचियों को देखने से यह पता चलता है कि अंग्रेज निजी जहाजरानी के विस्तार से सबसे ज्यादा नुकसान गुजराती व्यापारियों को हुआ। हालांकि 18वीं शताब्दी के आरंभ में सूरत से बंगाल की ओर जाने वाले जहाजों की संख्या पचास थी परन्तु 1730 के दशक तक आते-आते यह संख्या काफी घट गई। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि 17वीं शताब्दी के अंत में गुजराती जहाजों की संख्या 100 से ऊपर थी जिसमें दो जहाज मुगलों के थे और 17 जहाज सूरत के व्यापारी मुल्ला अब्दुल गफूर के थे। 1780 के दशक के आसपास पश्चिमी हिन्द महासागर के व्यापार में कमी आई और पूर्व दिशा के व्यापार में बढ़ोतरी हुई जिसे होल्डेन फर्बर (Holden Furber) 'वाणिज्यिक क्रांति' मानते हैं।

वस्तुतः 18वीं शताब्दी के ठीक पहले सूरत में काफी धन और सोना-चांदी केवल लाल सागर क्षेत्र से आयातित होता था। एक अनुमान के अनुसार केवल लाल सागर से ही लगभग 60 लाख रुपए का व्यापार था। इसलिए मुगल मोखा को अपना 'कोषागार' मानते थे। इस समय सूरत के कुल व्यापार में यूरोपीय व्यापार का हिस्सा केवल 1/8वां था। परन्तु 18वीं शताब्दी के दूसरे दशक के मध्य के आसपास से लाल सागर और फारस की खाड़ी को होनेवाले गुजराती व्यापार में कमी आने लगी। सूरत के मुगल बंदरगाह का पतन और उस बंदरगाह पर गुजरात के व्यापारियों और जहाजों की अनुपस्थिति इस युग में हिन्द महासागर के व्यापार की असलियत थी। 1701 में उनके पास 112 जहाज थे जो 1710 में घटकर मात्र 20 रह गए। सूरत की कुल आय जो 17वीं शताब्दी के अंत में 160 लाख रुपए थी 18वीं शताब्दी में घटकर मात्र 50 लाख रुपए रह गई। भारत और फारस में एक साथ राजनीतिक विघटन होने (मुगल और सफाविद साम्राज्य का पतन) और 18वीं शताब्दी के दूसरे दशक में यमन में गृह युद्ध के फलस्वरूप भारतीय जहाजरानी को काफी नुकसान पहुंचा।

अंततः 17वीं और 18वीं शताब्दियों में भारतीय समुद्रपार व्यापार पर विचार करते हुए एक मौजूं सवाल यह पूछा जा सकता है कि पारसमुद्र व्यापार की तुलना में भारतीय जमीनी विदेशी व्यापार, खासतौर पर भारत से यूरोप को किए जाने वाले निर्यात की क्या स्थिति थी ? परिमाणात्मक और गुणात्मक प्रमाणों से यह धारणा ध्वस्त हो जाती है कि यूरोपीय बंगाल में प्रमुख निर्यातक थे और वे यहां सोना-चांदी के प्रमुख आयातक थे। यह दिखाया जा सकता है कि दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तुओं, कपड़ा और कच्चे रेशम के व्यापार में

भी यूरोपियों की अपेक्षा एशियाई व्यापारियों की हिस्सेदारी ज्यादा थी। यदि ऐसा था तो यह दावा कि यूरोपीय बंगाल में सोना-चांदी के सबसे बड़े आयातक थे, सही नहीं प्रतीत होता। वस्तुस्थिति यह है कि केवल यूरोपीय ही नहीं बल्कि यहां तक कि एशियाई व्यापारियों को भी बंगाल से माल उठाने के लिए सोना-चांदी लेकर आना पड़ता था। इसलिए यदि एशियाई बंगाल के माल के प्रमुख निर्यातक थे तो यह बात साफ हो जाती है कि यूरोपीय नहीं बल्कि एशियाई व्यापारी बंगाल में सोना-चांदी के प्रमुख आयातक थे। यह स्थिति बंगाल की थी परन्तु भारत के दूसरे हिस्सों में भी स्थिति इससे ज्यादा भिन्न नहीं रही होगी।

24.8 सारांश

मध्यकाल में समुद्रपार व्यापार यूरोप और एशिया के बीच सम्पर्क का सबसे बड़ा साधन था। व्यापारिक गतिविधियों ने बड़े पैमाने पर इन दोनों क्षेत्रों के समाज, अर्थव्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित किया। अरब प्रायद्वीप में इस्लाम के उदय के बाद लगभग 300 वर्षों तक अरब व्यापारियों और समुद्रियों ने समुद्रपार व्यापार पर कब्जा जमाए रखा। इस व्यापार के कारण हिन्द महासागर और भूमध्यसागर के बीच होने वाली लम्बी दूरी के व्यापार को जोड़कर रखने में मदद मिली।

लगभग 11वीं शताब्दी के बाद से समुद्रपारीय व्यापार में यूरोपीय व्यापारियों ने अरबों का स्थान लेना शुरू कर दिया। सबसे पहले इटली के व्यापारियों ने शिरकत की। इसके तुरंत बाद समुद्रपार व्यापार पर पुर्तगाली छा गए। इसी दौरान समुद्रपार व्यापार के एक महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में भारत उभरा। यहां भी सबसे पहले यूरोपीयों में पुर्तगालियों ने पूरे हिन्द महासागर पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया और एशिया में अपनी व्यापारिक गतिविधियों को तेज करने के लिए भारत को प्रमुख केन्द्र बनाया। 15वीं शताब्दी के बाद से समुद्रपार व्यापार में भारतीय व्यापारियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और इसमें उनकी हिस्सेदारी महत्वपूर्ण रही।

17वीं शताब्दी के आरम्भ से एशिया और यूरोप के समुद्री व्यापार पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए डच और ब्रिटिश के बीच घमासान प्रतिद्वंद्विता चली। सबसे पहले यूरोप में मसाला और खासतौर पर काली मिर्च निर्यात किया जाता था। 16वीं शताब्दी के बाद चावल, फल और कच्चा रेशम भी निर्यातित किया जाने लगा। 16वीं और 17वीं शताब्दी में नील, शोरा, सूती और रेशम के कपड़े और चीनी का निर्यात किया जाने लगा। यूरोपीय अपने साथ मुख्य रूप से ऊनी कपड़े, ऐशो आराम के सामान और मुख्य रूप से सोना-चांदी लाया करते थे। व्यापार सन्तुलन भारत के पक्ष में था। यहां एक बात स्पष्ट रूप से उजागर होती है कि भारतीय निर्यात में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों की अपेक्षा एशिया के व्यापारियों का हिस्सा ज्यादा था।

24.9 अभ्यास

1) इस्लाम के उदय ने 15वीं शताब्दी तक समुद्री व्यापार को कैसे प्रभावित किया ?
2) 11वीं और 15वीं शताब्दी के बीच यूरोपीय व्यापार किस प्रकार होता था ?
3) पुर्तगालियों द्वारा शुरू की गई कार्ताज़ और काफिला व्यवस्था क्या थी ?
4) पन्द्रहवीं शताब्दी में भारतीय समुद्रपार व्यापार का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
5) भारतीय समुद्रपार व्यापार पर पुर्तगालियों का क्या प्रभाव पड़ा ?
6) डच और अंग्रेजी कम्पनियों ने हिन्द महासागर में व्यापारिक गतिविधियों को किस प्रकार प्रभावित किया ?

Scanned with CamScanner